संगीत

तबला एवं पखावज

हमारे अवनद्ध वाद्य

कक्षा 11 के लिए संगीत की पाठ्यपुस्तक

© NCERT not to be republished

11153

विद्यया ऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

11153 – संगीत – तबला एवं पखावज – हमारे अवनद्ध वाद्य
कक्षा 11 के लिए संगीत की पाठ्यपुस्तक

ISBN 978-93-91444-22-8

प्रथम संस्करण
जुलाई 2021 श्रावण 1943

PD 3T RPS

© *राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2021*

₹ 155.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा सरस्वती आर्ट प्रिंटर्स, ई-25, सेक्टर-4, बवाना इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली -110 039 द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी., प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 — Phone : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 — Phone : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 — Phone : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप
पनिहटी
कोलकाता 700 114 — Phone : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 — Phone : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : *अनूप कुमार राजपूत*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य उत्पादन अधिकारी : *अरुण चितकारा*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *विपिन दिवान*
संपादन सहायक : *ऋषिपाल सिंह*
उत्पादन अधिकारी : *ए.एम. विनोद कुमार*

आवरण एवं सज्जा
बैनियन ट्री

© NCERT not to be republished

आमुख

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में, प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) से माध्यमिक शिक्षा और शिक्षक-शिक्षा के विभिन्न चरणों में, विस्तार से वर्णित है कि संगीत, कला एवं शिल्पकला विषयों पर विशेष बल दिया जाए। शिक्षा, विद्यार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकास करे तथा यह विचार करते हुए कि उम्र के प्रत्येक पड़ाव पर विद्यार्थियों के लिए क्या रुचिपूर्ण है और क्या नहीं, इसके लिए स्कूल के पूरे पाठ्यक्रम में संगीत, कला एवं शिल्प का समावेश अवश्य ही किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 आगे इस बात पर भी प्रकाश डालती है कि विद्यार्थियों को, विशेष रूप से माध्यमिक विद्यालय में अध्ययन करने के लिए, अधिक लचीलापन और विषयों को चुनने के विकल्प दिए जाएँगे। इनमें कला और शिल्प भी शामिल होंगे।

संगीत, कला एवं शिल्प आदि विषयों का चयन जहाँ तक संभव हो भारतीय और स्थानीय भौगोलिक संदर्भों के आधार पर किया जाएगा। मानविकी और कला की माँग बढ़ेगी, क्योंकि भारत एक विकसित देश बनने के साथ-साथ दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक बनने की ओर भी अग्रसर है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में, बहुभाषावाद और भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत सीखने पर विशेष बल दिया गया है। संस्कृत ग्रंथों में संगीत के विशाल भंडार पाए जाते हैं। भारतीय संगीत के गहन अध्ययन से भाषा के साथ-साथ संगीत की सामग्री को भी जानने का मार्ग प्रशस्त होगा।

विशेष प्रतिभा वाले और मेधावी विद्यार्थियों की सहायता हेतु म्यूज़िक परफ़ार्मेंस सर्कल, लैंग्वेज सर्कल, ड्रामा सर्कल इत्यादि स्कूल, ज़िलों और उससे आगे के स्तरों पर समर्थित किए जाएँगे। यह पाठ्यपुस्तक स्कूली शिक्षा के दौरान बच्चों के मूल्य संवर्धन हेतु उपर्युक्त लक्ष्यों के संदर्भ में प्रासंगिक है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 स्पष्ट करती है कि कला शिक्षा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लाने के लिए उच्च शिक्षा संस्थानों एवं शिक्षक शिक्षा संस्थानों में संगीत के पाठ्यक्रम को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में तबला एवं पखावज के शिक्षक, विद्यार्थियों का ज्ञानवर्द्धन कर रहे हैं। आज तबला एवं पखावज जैसे अवनद्ध वाद्यों को बहुत-से लोग आजीविका के रूप में अपना रहे हैं। विदेशों में भी इन वाद्यों को प्रसिद्धि प्राप्त है एवं इन पर क्रमश: ज्ञानवर्द्धन हो रहा है।

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक में अवनद्ध वाद्यों के इतिहास, इनकी बनावट, वादन शैली तथा कलाकार आदि सभी विषयों पर विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त जानकारी प्रदान की गई है। उच्च माध्यमिक स्तर पर पाठ्यपुस्तक, *संगीत— तबला एवं पखावज— हमारे अवनद्ध वाद्य* प्रकाशित की जा रही है, जो विद्यार्थियों को तबला एवं पखावज के उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए प्रेरित करेगी। तबला, पखावज या अन्य अवनद्ध वाद्यों में रुचि रखने वाले कला प्रेमियों के लिए यह पाठ्यपुस्तक लाभप्रद सिद्ध होगी। पाठ्यपुस्तक की गुणवत्ता और सुधार के लिए रा.शै.अ.प्र.प. वचनबद्ध है और सुझावों और टिप्पणियों का स्वागत करती है जो भविष्य में पुस्तक के संशोधन और परिष्करण में हमारी सहायता करेंगे। आशा करता हूँ कि इस पाठ्यपुस्तक को विद्यार्थी ध्यान से पढ़ेंगे और विषय-वस्तु का लाभ उठाएँगे।

श्रीधर श्रीवास्तव
निदेशक (प्रभारी)
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
नवंबर 2020

© NCERT not to be republished

© NCERT not to be republished

प्राक्कथन

प्यारे बच्चो!

ललित कलाओं में संगीत का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय संगीत ने न केवल भारत में बल्कि विश्व में अपनी उत्कृष्ट पहचान बनाई है। मानव जीवन के विभिन्न सरोकारों से जुड़े होने और अपनी आध्यात्मिक ऊँचाइयों के कारण भारतीय संगीत को विश्वव्यापी लोकप्रियता और सम्मान मिला है। दुनियाभर के संगीतकारों ने इसकी श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। मौसम तथा अवसर चाहे कोई भी हो, संगीत ने अपने सुरों से हमेशा समारोह के आकर्षण को बढ़ाया है। सभी उपासना पद्धतियों में अपने देवता की आराधना के लिए संगीत के स्वर और लय का प्रयोग किया जाता है। संगीत से मन को एकाग्रचित्त करने में सहायता मिलती है। इसी कारण प्रात:काल संगीत के माध्यम से दिन की शुरुआत करने पर मन शांत, आनंदमय एवं उत्साहित रहता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारे समाज में संगीत एक आवश्यक तत्व के रूप में विद्यमान रहता है। संगीत की इन्हीं भावनाओं के असीम आकाश में अठखेलियाँ करते स्वरों को अनुशासित और लयबद्ध करने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का आविष्कार और निर्माण प्राचीन काल से होता रहा है।

भूदुन्दुभी, दुन्दुभी, आडंबर, पुष्कर, नक्कारा, दुक्कड़, खोल, ढोल, घटम्, मृदंगम्, पुंग, नाल, पखावज और तबला आदि अवनद्ध वाद्यों ने समय-समय पर संगीत को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनका दायरा लोकसंगीत से लेकर शास्त्रीय संगीत तक फैला है। कालांतर में अवनद्ध वाद्यों की सृजनात्मकता का और अधिक विस्तार हुआ है। लय तथा ताल दिखाने के साथ-साथ गीत के शब्दों और भावों के अर्थ को भी विभिन्न 'टुकड़ों' एवं 'बोलों' द्वारा और अधिक मुखरित किया गया है। इस भूमिका के कारण सांगीतिक प्रस्तुतियाँ बेहतर सुनाई देने लगी हैं। विभिन्न प्रकार की गायन शैलियों के लिए अलग-अलग अवनद्ध वाद्यों का निर्माण हुआ है। यदि उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत की बात करें तो तबला एवं पखावज आज सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्य हैं। परंपरागत रूप से देवालयों में मृदंग या पखावज का प्रयोग होता रहा है, लेकिन बदलते समय के साथ अवनद्ध वाद्यों ने अपना स्थान राजदरबारों, महफ़िलों एवं संगीत के महत्वपूर्ण मंचों पर बनाया है। वीणा के विभिन्न प्रकारों की संगति के लिए मृदंगम् का प्रयोग व्यापक रूप से होता रहा है, लेकिन आज भक्ति संगीत के साथ-साथ ध्रुपद, धमार, सितार, सरोद, सुरबहार, कथक नृत्य इत्यादि के साथ संबंधित होकर पखावज अपनी क्षमता का परिचय दे रहा है। इसके विपरीत तबला ने मुगलकाल से अपनी यात्रा शुरू की थी। लेकिन शनै:-शनै: अपने रूप को निखारते और सँवारते हुए आज स्वयं को इतना सक्षम और सबल बना लिया है कि शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम, लोक और फ़िल्म संगीत सभी के साथ न केवल कदम से कदम मिलाकर चल रहा है, बल्कि उन्हें समृद्ध भी बना रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से तबला एकल वादन परंपरा का प्रारंभ हुआ। अपने निजी नाद सौंदर्य और लयात्मकता के अनूठे प्रयोगों के कारण तबले का एकल वादन श्रुति मधुर एवं जनप्रिय है। वर्तमान में तबला वादक संगीत के प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

हमारे जीवन के बहुत से क्रियाकलाप लय से जुड़े हुए हैं। जब आप साँस लेते हैं तो क्या उसमें कुछ लयात्मक होता है? सोचो और विचार करो... क्या आगे दी गई क्रियाओं में आपको लय दिखती है?

© NCERT not to be republished

जैसे— बात करना, चलना, अपने हाथ-पैर को हिलाना, कोई भी वाहन चलाना, एक पक्षी का आकाश में उड़ना, रेलगाड़ी का चलना, सूर्य का अपनी धुरी पर घूमना एवं पृथ्वी का उसके चारों ओर चक्कर लगाना, पेड़-पौधों का झूमना इत्यादि।

अगर इन सब पर भली-भाँति सोच-विचार करें तो यह समझ में आएगा कि लय का हर जगह समावेश है अर्थात् लय महत्वपूर्ण है। दिल पर हाथ रखो तो धक-धक की आवाज़ सुनाई देती है। दिल की धड़कन जब असंतुलित हो जाती है, तब हम बीमार पड़ सकते हैं। लय ही ज़िंदगी को स्वस्थ और गतिशील बनाए रखती है।

इसी लय को मनुष्य ने समझा और उस पर गहन शोध किए, चाहे वह कला हो या विज्ञान, लय की महत्ता हर क्षण महसूस की गई है। प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक तबला एवं पखावज के सैद्धांतिक पक्ष के विचार-विमर्श के लिए बनाई गई है। यह पुस्तक उसी लय की कहानी को बताती है, जो हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण तत्व है। संगीत को मनीषियों ने लय में बाँधकर एवं उसकी विभिन्न तारतम्यता को जाँचकर, अनेक वाद्य यंत्रों की रचना की तथा उस पर विभिन्न लय विन्यासों का अभ्यास किया।

आप सभी गीत सुनते हैं तो सर्वप्रथम लय ही आपको आकर्षित करती है। तभी तो ढोल, ढोलक, नगाड़ा, तबला, ड्रम इत्यादि की लय से खुश होकर आप नृत्य करते हैं।

अवनद्ध वाद्य का कोई भी प्रकार लय को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। यही लय जब यथाक्रम बाँध दी जाती है तो अनेक प्रकार के ताल बनते हैं, जैसे— कहरवा, दादरा, तीनताल, एकताल, चौताल इत्यादि। विभिन्न तरह की रचनाओं के लिए इन तालों का व्यवहार सुनने को मिलता है। अवनद्ध वाद्य भी कई प्रकार के होते हैं, जैसे— ढोल, ढोलक, तबला, पखावज, खोल, मृदंगम्, खरताल, कंजीरा इत्यादि। साधारण लोगों ने इसे बनाया एवं क्रमश: परिष्कृत किया। वर्तमान युग में इन वाद्यों में बजाए जाने वाले लय-ताल इतने लोकप्रिय हैं कि इनके बिना संगीत की कल्पना नहीं की जा सकती है।

तबला एवं पखावज वाद्य सृष्टि एवं सृजन कला का महत्वपूर्ण अंग हैं, इसलिए इन वाद्यों के अध्ययन पर यह पाठ्यपुस्तक बनाई गई है। अपने चारों ओर दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट होता है कि यह दो वाद्य बहुत प्रसिद्ध हैं तथा कई दशकों से विशेषज्ञों ने कठिन परिश्रम से इन्हें सजाया, सँवारा है और इन पर शोध किए हैं। उपरोक्त बातों को आप जैसे बच्चों तक पहुँचाना हमारा कर्तव्य है। अत: कुछ विशेष प्रसंगों को चुनकर आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस पाठ्यपुस्तक में संगीत का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। कुछ सांगीतिक परिभाषाएँ, जो शास्त्रीय संगीत के आधार तत्व हैं, उनका भी परिचय दिया गया है। इसके उपरांत तबला एवं पखावज का सचित्र वर्णन, उनकी उत्पत्ति एवं विकास, वाद्यों का वर्गीकरण, कुछ अवनद्ध वाद्यों का वर्णन, इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का वर्णन, तबला एवं पखावज के वर्णों का विवरण एवं वादन विधि, कुछ तालों के ठेके लिखने की पद्धति, भातखंडे ताल लिपि पद्धति, तबला एवं पखावज के कतिपय घरानों का उल्लेख, तबला एवं पखावज के महान कलाकारों एवं संगीतज्ञों के योगदान, इन सभी विषयों पर विस्तृत चर्चा की गई है। आप सभी वाद्यों को बजाना सीखें एवं इस पाठ्यपुस्तक के अध्यायों को पढ़कर अपना ज्ञानवर्द्धन करें। यह पाठ्यपुस्तक उच्च माध्यमिक स्तर पर उन बच्चों की दक्षताओं को बढ़ाने के लिए है, जो अवनद्ध वाद्य-वादन सीख रहे हैं।

© NCERT not to be republished

इन वाद्यों को सीखने के प्रतिफल—

- अवनद्ध वाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास के बारे में जानना।
- तबला एवं पखावज की मुख्य विशेषताओं को विस्तार से समझना।
- अवनद्ध वाद्यों — तबला एवं पखावज के मूल बोलों को पहचानना।
- तबला एवं पखावज की वादन विधि या प्रविधि को जानना।
- अवनद्ध वाद्यों के ताल, स्वरूपों व प्रकारों को लिपिबद्ध करना।
- अवनद्ध वाद्यों के विकास में सहायक तबला एवं पखावज के प्रसिद्ध कलाकारों एवं उनके घरानों के बारे में विस्तार से जानना

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा पहली बार तबला एवं पखावज पर पाठ्यपुस्तक बनाई गई है। हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक आपको पसंद आएगी। आप पाठ्यपुस्तक में सुधार हेतु अपने महत्वपूर्ण सुझाव हमें अवश्य प्रेषित करें ताकि दूसरे संस्करण में इस पाठ्यपुस्तक को और भी समृद्ध बनाया जा सके।

शर्बरी बैनर्जी
सहायक प्रोफ़ेसर
कला एवं सौंदर्यबोध शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

© NCERT not to be republished

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके; और

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

मुख्य सलाहकार

मुकुन्द नारायण भाले, *प्रोफ़ेसर* एवं *अध्यक्ष* (सेवानिवृत्त), इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, छत्तीसगढ़

सदस्य

अनुपम महाजन, *प्रोफ़ेसर*, *भूतपूर्व अधिष्ठात्री* एवं *विभागाध्यक्ष*, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अमित कुमार वर्मा, *सहायक प्रोफ़ेसर*, विश्वभारती शांति निकेतन विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल
प्रज्ञा वर्मा, *उपसचिव*, सी.बी.एस.ई., प्रयागराज

मधु बाला सक्सेना, *प्रोफ़ेसर* (सेवानिवृत्त), संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, *पूर्व विभागाध्यक्ष,* संगीत एवं नृत्य विभाग, *अधिष्ठात्री*, प्राच्य विद्या संकाय, *कार्यकारी कुलपति,* कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा

विजय शंकर मिश्र, *संगीत लेखक* एवं *निदेशक*, सोसाइटी फ़ॉर एक्शन थ्रू म्यूज़िक (सम), नयी दिल्ली
सचिन सागर, *संगीत लेखक*, उत्तर प्रदेश

सदस्य समन्वयक

शर्बरी बैनर्जी, *सहायक प्रोफ़ेसर*, कला एवं सौंदर्यबोध शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली

© NCERT not to be republished

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में सहयोग के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् विभिन्न संस्थाओं, विषय-विशेषज्ञों, शिक्षकों एवं विभागीय सदस्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

परिषद्, कला एवं सौंदर्यबोध शिक्षा विभाग की *विभागाध्यक्ष* पवन सुधीर *(प्रोफ़ेसर)* एवं ज्योत्सना तिवारी *(प्रोफ़ेसर)* के प्रति कृतज्ञ है, जिन्होंने मूल्यवान समय और सहयोग प्रदान कर इस पुस्तक को उपयोगी बनाने हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

परिषद्, श्वेता उप्पल, *(मुख्य संपादक)* प्रकाशन प्रभाग की भी बहुत अभारी है जिन्होंने इस पुस्तक को बेहतर बनाने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

परिषद्, इस पुस्तक की रचना के लिए पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद्, इस पुस्तक के डिज़ाइन के लिए श्वेता राव को आभार व्यक्त करती है।

परिषद्, संगीत नाटक अकादमी के सदस्यों, रीता स्वामी, *(सचिव)* जयंत चौधरी एवं प्रीत पाल (फ़ोटो सेक्शन) के प्रति आभारी है, जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में सहयोग प्रदान किया।

इसके साथ ही परिषद्, अजय पाठक *(सहायक प्रोफ़ेसर)*, दिल्ली विश्वविद्यालय, अमित मिश्र *(सहायक प्रोफ़ेसर,* विश्वभारती, शान्तिनिकेतन), विजय शंकर मिश्र *(लेखक)* मोहन श्याम शर्मा एवं अनुराधा पाल (संगीत कलाकार) का भी आभार प्रकट करती है, जिन्होने तस्वीरे देकर इस पुस्तक को अमूल्य बनाया।

परिषद्, पुस्तक के विकास के विभिन्न चरणों में सहयोग के लिए कला एवं सौंदर्यबोध शिक्षा विभाग के अक्षया अनन्तकृष्णन और शिखा श्रीवास्तव *(जे.पी.एफ.),* संजीद अहमद *(डी.टी.पी. ऑपरेटर),* फात्मा नासिर *(ग्राफ़िक डिज़ाइनर)* एवं काजल कुमारी *(टाइपिस्ट)* के प्रति आभार प्रकट करती है।

इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में कई शिक्षकों ने भी अपना अमूल्य योगदान दिया। परिषद् उन सभी के प्रति अपना आभार प्रकट करती है। प्रो. मनीकन्दन (संगीत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय), मिलन देव (*अध्यापक*– महाराष्ट्र), मोनिका दादू (*अध्यापिका*– दिल्ली), मुकेश कुमार, (*अध्यापक*–केंद्रीय विद्यालय, मेरठ), नीरा चौधरी (*प्रोफ़ेसर,* पटना विश्वविद्यालय) और श्रुति अधिकारी, (*अध्यापक*, डीएमएस, भोपाल) के नाम उल्लेखनीय हैं।

परिषद्, इस पुस्तक के संपादन के लिए मीनाक्षी, *सहायक संपादक* (संविदा) और कहकशा, *सहायक संपादक* (फ्रीलांसर) और नरेश कुमार *(डी.टी.पी. ऑपरेटर),* प्रकाशन प्रभाग का आभार व्यक्त करती है। आवरण एवं सज्जा प्रकाशन कार्य में सक्रिय सहयोग के लिए प्रकाशन प्रभाग, रा.शै.अ.प्र.प. का सहयोग प्रशंसनीय है।

© NCERT not to be republished

भूमिका

भारतीय संगीत का ऐतिहासिक अवलोकन

चित्र (अ) – संगीत प्रस्तुत करते हुए राजस्थान के लांगा मांगणियर जाति के लोग

भारतीय संगीत के ऐतिहासिक अवलोकन के लिए सर्वप्रथम मानव की उत्पत्ति और इस सृष्टि में व्याप्त उन तत्वों, जैसे— ध्वनि, स्वर, लय आदि पर ध्यान देना होगा, जिनके कारण यह सृष्टि गतिमान है। मानव को ध्वनि एवं लय का एहसास सर्वप्रथम दिल की धड़कन सुनकर एवं इसके पश्चात् पत्तों की सरसराहट, मेघों की गर्जना, वर्षा की बूँदों, झरनों से गिरते पानी के निनाद, पक्षियों के कलरव, पशु-पक्षियों की आवाज़ आदि से हुआ होगा। स्वाभाविक है कि इन प्राकृतिक घटनाओं में छिपी ध्वनि एवं लय ने सर्वप्रथम मनुष्य का ध्यान आकर्षित किया हो। मनुष्य के विविध भाव, जैसे— प्रसन्नता, दु:ख, हठ, आक्रोश, शौर्य, ललकार आदि भी मनुष्य के हृदय से स्वभावत: लय, छंद एवं ध्वनि के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। जिन विविध भावों का मानव ने क्रमश: अनुभव किया, उन रसात्मक अनुभूतियों को ध्वनि एवं लयबद्ध कर अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया क्रमश: संगीत बनी। संगीत से अभिप्राय है— 'कर्णप्रिय ध्वनि'। यही संगीत क्रमश: मानव जीवन का अभिन्न अंग बन गया। जब मानव ने समूह में रहना प्रारंभ किया होगा, तब भाषाएँ विकसित हुई होंगी। संवाद हाव-भाव एवं कंठध्वनि के विविध प्रयोगों से भी संभव है, परंतु भाषा बौद्धिक ज्ञान एवं शब्दों के अर्थ पर निर्भर करती है। यह मानना पड़ेगा कि संगीत भावानुभूति पर निर्भर करता है। इसीलिए यह कहना भी गलत न होगा कि मानव जीवन में पहले संगीत ने अपना स्थान बनाया तत्पश्चात् भाषा ने अपनी जगह बनाई। इसके पश्चात् भाषा का रसात्मक प्रयोग करके संगीत में ढाला गया, जिसका परिष्कृत रूप आज विभिन्न संगीत शैलियों के रूप में प्रचलित है।

संगीत की उत्पत्ति

संगीत की उत्पत्ति के संदर्भ में अनेक मत-मतांतर होने पर भी एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि गान की सहज प्रवृत्ति होने के कारण, गुनगुनाना, सार्थक शब्दों को किसी धुन या किसी लय के आश्रय से गाना, किसी धातु या तंतु को वाद्य के रूप में बजाना, मुख मुद्रा, हस्त मुद्रा या पद संचालन से नृत्य के रूप में भावों को अभिव्यक्त करते हुए हाव-भाव का प्रयोग करना आदि से ही विकसित प्रयोगों को संगीत की उत्पत्ति का मूलाधार कहा जा सकता है।

संगीत की उत्पत्ति के संबंध में कुछ किंवदंतियाँ भी प्रचलित हैं, जैसे— संगीत का जन्म (ॐ) 'ओउम्' शब्द से हुआ। ओउम् शब्द के तीन अक्षर 'अ' 'उ' तथा 'म' ब्रह्मा, विष्णु व महेश के रूप में ईश्वरीय

© NCERT not to be republished

चित्र (आ) – मणिपुर का थांग्ता नृत्य

शक्ति के द्योतक हैं। ओम् परमेश्वर की सर्वोत्तम संज्ञा है। 'ओम्' के उच्चारण के फलस्वरूप नाद, नाद से श्रुति व स्वर और स्वर से ही संगीत की उत्पत्ति हुई है। एक कथा के अनुसार, हज़रत मूसा को एक पत्थर प्राप्त होने का उल्लेख है, जिस पर पानी की धार पड़ने से उसके सात टुकड़े हो गए और पानी की सात धाराएँ प्रवाहित होने लगीं। उन धाराओं से सात ध्वनियाँ निकलीं, यही सात ध्वनियाँ संगीत के सात स्वरों के रूप में प्रचलित हुईं।

प्रथम या द्वितीय शताब्दी में भारतीय संगीत पर लिखे गए *नारदीय शिक्षा* ग्रंथ के रचयिता नारद का मत है कि पशु-पक्षियों की ध्वनि ने ही सात स्वरों को जन्म दिया है। जिस प्रकार ईंट, पत्थर आदि से एक भवन निर्मित होता है, पत्थरों को तराश कर मूर्ति बनाई जाती है, विभिन्न रंगों के मिश्रण से चित्र बनता है, उसी प्रकार षड्ज, ऋषभ, गंधार आदि सप्त स्वरों तथा विलंबित, मध्य व द्रुत आदि लयों के सम्मिश्रण से संगीत विभिन्न रागों, बंदिशों, गीतों व धुनों आदि के रूप में विशेष आकार ग्रहण करता है। सभी रचनाएँ विभिन्न विचारों को व्यक्त करते हुए रस व आनंद की अनुभूति कराती हैं।

चित्र (इ) – तमिलनाडु का लोक नृत्य

संगीत से गायन, वादन व नृत्य, तीनों का बोध होता है। 'गायन' का संबंध कंठ संगीत से है, जबकि 'वादन' का तात्पर्य विभिन्न वाद्यों के माध्यम से प्राप्त ध्वनि से है। हस्त मुद्रा, पद संचालन तथा अभिनय से युक्त अभिव्यक्ति 'नृत्य' से संबंध रखती है। मानव को उल्लसित करने वाला संगीत न केवल मस्तिष्क पर सीधे सकारात्मक प्रभाव डालता है, बल्कि संगीत से अनेक मानसिक रोगों का उपचार किए जाने के दृष्टांत भी हमारे साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध हैं। आधुनिक काल में संगीत चिकित्सा पर विशेष शोध कार्य चल रहे हैं। पशु-पक्षी व पेड़-पौधों पर भी संगीत के प्रभाव के सार्थक परिणाम अंकित किए गए हैं।

© NCERT not to be republished

ईसा के जन्म से पूर्व भी भारतीय संगीत उन्नत अवस्था में था, जिसका प्रमाण सिंधु घाटी की खुदाई से प्राप्त होने वाले अवशेषों से मिलता है। सात छिद्र वाली वंशी, विभिन्न प्रकार की वीणाएँ, मृदंग तथा अन्य प्रकार के अवनद्ध वाद्य एवं करताल बजाते हुए नर्तकियों की पूर्ण या खंडित मूर्तियाँ तत्कालीन संगीत अभिरुचि और उसकी उन्नत अवस्था का परिचय देती हैं। बौद्धकालीन जातक कथाओं में भारतीय संगीत और अनेक प्रकार के वाद्यों की तत्कालीन स्थिति से संबंधित उल्लेख प्राप्त होते हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में संगीत को गांधर्व की संज्ञा देते हुए कहा गया है—

"अनादि सम्प्रदायं यद् गान्धर्वैः सम्प्रयुज्यते
नियतं श्रेयसो हेतुर्त द्गन्धर्व प्रचक्षते"

— पं.रामामान्य स्वमेल क्लानिधि

अर्थात् जो अनादि है, इसे कब व कैसे उत्पन्न किया गया, यह नहीं कहा जा सकता है, परंतु जिसका प्रयोग गंधर्वों द्वारा किया गया, जो नियमबद्ध व श्रेयस अर्थात् आत्मिक उन्नति का साधन है, उसे ही 'गांधर्व' कहा गया है। गंधर्वों द्वारा प्रयुक्त किए जाने के कारण ही संभवत: संगीत को 'गांधर्व' संज्ञा दी गई है।

सामवेद

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो वेदकालीन सभ्यता में सामवेद का गान किए जाने के लिखित साक्ष्य मिलते हैं, जिसके साथ अनेक वाद्यों का वादन भी किया जाता था। *ऋग्वेद* की ऋचाओं में से गेय ऋचाओं के संकलन के फलस्वरूप *सामवेद* की रचना हुई है। *ऋग्वेद* की ऋचाओं के पाठ्य स्वरूप की अपेक्षा जब उनका 'साम' स्वरों सहित विधिपूर्वक गान किया जाता था तो काव्य व संगीत के समन्वय से वे ऋचाएँ ईश्वर आराधना के लिए अधिक प्रभावशाली हो जाती थीं। ऐसी ही ऋचाओं का संकलन है — *साम संहिता*।

वैदिक काल में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित— ये तीन स्वर सर्वप्रथम प्रचलन में थे; इसके बाद क्रमश: तीन से पाँच व पाँच से सात स्वरों का विकास हुआ।

इस प्रकार गेय स्वरूप का विकास होता रहा और भिन्न-भिन्न नाम व संज्ञा से इन स्वरों का तथा सप्तक आदि का विकास होता चला गया। सामगान अधिकतर विभिन्न धार्मिक कार्यों को संपन्न किए जाने वाले यज्ञ आदि के अवसर पर पंडितों या पुरोहितों द्वारा गाया जाता था, जिन्हें 'ऋत्विज' कहा जाता था। साम के प्रमुख तीन ऋत्विज गायक होते थे— प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता। मुख्य गायक उद्गाता होता था और प्रस्तोता व प्रतिहर्ता उसके सहायक होते थे।

प्राचीन साहित्य का अध्ययन करने पर एक और बात ज्ञात होती है कि प्रारंभ से ही संगीत की दो धाराएँ साथ-साथ चलती रही हैं, जिन्हें 'मार्ग व देशी' कहा गया है। दामोदर पंडित कृत संगीत दर्पण के अनुसार—

"गीतं वाद्यं नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते
मार्ग-देशी विभागेन संगीतं द्विविधम् मतम्।।"

अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य तीनों को संगीत कहा जाता है। संगीत दो प्रकार का माना गया है— मार्ग और देशी। मार्ग संगीत, नियमबद्ध और अपरिवर्तनीय था। देशी संगीत में नियमों की अपेक्षाकृत शिथिलता

© NCERT not to be republished

थी और लोक रुचि के अनुरूप होने से इसमें परिवर्तन की गुंजाइश भी रहती थी। देशी को परिभाषित करते हुए *संगीत रत्नाकर* में कहा गया है—

"देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजकम्गी
तं वादनं च नृत्तं तद्देशी त्यभिधीयते।"

अर्थात् अलग-अलग प्रांतों में लोगों की रुचि के अनुसार जो मनुष्य के हृदय को आनन्दित करता गीत, वाद्य और नृत्य होता है, उसे देशी कहा जाता है।

चित्र (ई) – महाराष्ट्र का लोक नृत्य

इस प्रकार हर काल और हर समाज में नियमबद्ध और परिवर्तनीय, इन दोनों प्रकार का संगीत प्रचार में रहा है।

पौराणिक कहानियों में गंधर्व, किन्नर, यक्ष, अप्सरा आदि संगीत से जुड़ी अनेक प्रकार की जातियों का उल्लेख मिलता है, जिनका कार्य संगीत की आराधना व प्रदर्शन करना था। *रामायण* एवं *महाभारत* आदि महाकाव्यों में अनेक सांगीतिक तत्वों का उल्लेख मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय संगीत अत्यंत प्राचीन काल से ही न केवल प्रचार में था, अपितु उसका एक विशिष्ट शास्त्र भी था।

रामायण और महाभारत काल में संगीत के अनेक संदर्भ प्राप्त होते हैं। बाल्मीकि रचित *रामायण* में, श्रीराम व सीता के पुत्र लव-कुश द्वारा राजा राम के समक्ष रामकथा का गान करने का उल्लेख मिलता है।

महाभारत में भी धनुर्धारी अर्जुन द्वारा राजा विराट की पुत्री उत्तरा को संगीत और नृत्य की शिक्षा प्रदान करने का और स्वयं अर्जुन द्वारा मृदंग वादन से संगति करने का उल्लेख मिलता है।

लगभग दूसरी शताब्दी में रचित *नाट्यशास्त्र* में भरतमुनि ने जिस विस्तार के साथ संगीत की चर्चा की है, उससे यह सिद्ध होता है कि विश्व की अन्य सभ्यताओं से भी बहुत पहले भारतीय संगीत नियमबद्ध होकर जनमानस में प्रचलित था। हमारे ग्रंथों में दिए गए संदर्भ इस बात को प्रमाणित करते हैं।

भरतमुनि कृत *नाट्यशास्त्र* प्राचीन काल के उपलब्ध ग्रंथों में से एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। नाटक या नाट्यकला के संदर्भ में गायन, वादन व नृत्य की प्रधानता के कारण इसे पंचम वेद या 'नाट्यवेद' भी कहा गया है। संगीत की विस्तृत चर्चा के कारण इसे 'गांधर्ववेद' की भी संज्ञा दी गई।

कालांतर में राजा समुद्रगुप्त (गुप्त काल 300 ई.– 600 ई.) की वीणावादक के रूप में चित्रित मुद्रा यह भी सिद्ध करती है कि उस काल में संगीत को केवल राज्याश्रय ही प्राप्त नहीं था, अपितु तत्कालीन शासक स्वयं भी संगीत की शिक्षा ग्रहण करते थे। गुप्त काल में ऐसा माना जाता है कि भारतीय साहित्य, संस्कृति, शिल्पकला और संगीत का बहुत विकास हुआ। महाकवि कालिदास की रचनाओं में भी संगीत संबंधी अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। सम्राट हर्षवर्धन स्वयं एक उत्कृष्ट गायक थे और उनके दरबार में नृत्य, गीत व संगीत के उत्कृष्ट प्रयोग व प्रदर्शन होते थे। हर्षवर्धन की बहन राजश्री भी संगीत में निपुण थीं।

चित्र (उ) – छत्तीसगढ़ का लोक नृत्य

मतंग मुनि द्वारा रचित *बृहद्देशी* जो लगभग सातवीं सदी की रचना है, संगीत के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है।

मध्यकाल में संगीत के विकास के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। परिवर्तन मानव प्रकृति और सृष्टि का गुण है, इसीलिए संगीत के स्वरूप भी निरंतर परिवर्तित होते रहे। शारंगदेव कृत *संगीत रत्नाकर* में (तेरहवीं शताब्दी) मार्ग व देशी, दोनों प्रकार के संगीत की अवधारणा स्पष्ट की गई है। इस काल में पूर्व प्रचलित ग्राम, मूर्च्छना पद्धति पर आधारित जाति गायन के दस लक्षणों के आधार पर विकसित राग गायन का आविर्भाव हुआ। जाति गायन से धीरे-धीरे प्रबंध गेय विधा का उद्भव हुआ।

संगीत रत्नाकर में अनेक विद्वानों का उल्लेख किया गया है, जैसे— सदाशिव, दुर्गशक्ति, भरत, कश्यप, मतंग, कोहल, दत्तिल, नान्यदेव, भोजराज आदि। इन विद्वानों ने तेरहवीं शताब्दी तक संगीत की परंपरा को आगे बढ़ाया।

प्राचीन तमिल संगीत

प्राचीन काल से ही हमारे देश में संगीत का विकास निरंतर होता रहा, कई पड़ाव आए, राजनैतिक बदलाव एवं समय के साथ-साथ मनुष्य की रुचि में कई परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। सभी प्रकार के बदलाव व परिस्थितियों के बावजूद संगीतज्ञों के प्रयास से संगीत उन्नति की

चित्र (ऊ) – अवनद्ध वाद्य का प्रारंभ

© NCERT not to be republished

सीढ़ी पर धीरे-धीरे अग्रसर होता रहा। दक्षिण भारत में तीसरी सदी ईसा पूर्व से संगीत की एक और शैली का विकास हुआ, जिसे 'तमिल संगीत' के नाम से जाना जाता है। तमिल संगीत का उद्‌भव अगस्त्य मुनि एवं उनके शिष्य तोल्काप्पियर (*तोल्काप्पियम* के रचयिता) के काल से माना जाता है। *तोल्काप्पियम* दक्षिण भारत के संगीत एवं साहित्य के निरूपण करने का एक अनन्यतम् ग्रंथ है। द्रविड़ परंपरा में चेर, चोल, पाण्डय, पल्लव, सातवाहन आदि प्रसिद्ध समुदाय थे, जिनका निवास स्थान विंध्य पर्वत का निचला हिस्सा था। इन समुदायों की भाषा में काफ़ी समानता थी। सभी समुदायों की भिन्न सत्ता थी, लेकिन इनका साहित्य, कला एवं शिक्षा के लिए 'संगम' नाम की बुद्धिजीवी गोष्ठी थी। ऊपर दिए गए सभी समुदाय के विशिष्ट व्यक्ति 'संगम' के सदस्य होते थे।

इस काल में संगीत, नृत्य एवं कलाओं में निम्नलिखित ग्रंथों की रचना हुई, *अइन्कुरूनूरू*, *अकनानूरू*, *पुरनानूरू*, *कलित्तोगइ*, *कुरून्तोगइ*, *नट्रीनइ*, *परिपाडल*, *पत्तिट्रपाट्टु*।

महाकाव्य— जैसे— *चिलप्पदिगारम*, *मणिमेखलइ*, *सीवक चिन्तामणि*।
सांगीतिक ग्रंथ— जैसे— *पञ्चमरबु*।

'पण' संगीत का मुख्य स्केल या सप्तक था और 'तिरम' गौण समूह माना जाता था। संगीत के स्केल या सप्तकों के नाम, उनके उद्‌भव स्थल के अनुसार नामकरण किए गए थे, जैसे—

- *मुल्लई पण* (पर्वत क्षेत्र से)
- *नेईथल पण* (समुद्री क्षेत्र से)
- *कुरीन्जी पण* (वन क्षेत्र से)
- *मरुदम पण* (हरे-भरे क्षेत्र से)
- *पालई पण* (रेगिस्तान क्षेत्र से)

संगीत के स्वर 'हिंदुस्तानी संगीत' के अनुकूल थे, लेकिन उनके नाम भिन्न थे। कुरल, तुत्तम, कइक्किलइ, उलइ, इली, विलरि और तारम, संगीत को 'इसइ' कहा जाता था और उसमें प्रयुक्त होने वाले स्वरों की ऊँचाई या निचाई को केल्वि कहा जाता था। श्रुति को अलुकु और ताल को सीर या पाणि के नाम से जाना जाता था।

शैव वंश की सांगीतिक रचनाएँ, जैसे— *तेवारम्*, *तिरुवाचकम्*, *तिरुप्पुगल*, *तिरुवाइमोज़ी* थीं। इसके रचयिता अप्पर, तिरुज्ञान सम्बन्दर, सुन्दरमूर्ति, नायनमार थे। वैष्णव रचनाएँ *तिरुप्पावइ*, *तिरुवैमपावइ* थीं जो विशिष्ट रागों एवं तालों में गाई जाती थीं। यह संगीत तेरहवीं शताब्दी तक चेरा, चोला एवं पाण्डया राजाओं के काल तक प्रचलित रहा।

चित्र (ए) –गिरिजा देवी— हिंदुस्तानी शास्त्रीय गायन प्रस्तुत करते हुए

कर्नाटक संगीत का उद्‌गम

चौदहवीं शताब्दी में विजय नगर साम्राज्य की स्थापना के साथ कर्नाटक संगीत का उद्‌भव हुआ। आचार्य विद्यारण्य (1320–80)

© NCERT not to be republished

की पुस्तक *संगीत सार* से इस बात की पुष्टि मिलती है। 'मेल' का निरूपण सर्वप्रथम उन्हीं की पुस्तक से प्राप्त होता है। कर्नाटक संगीत के प्रचार एवं विकास के लिए उनके शिष्य गण संगीतज्ञ व्यासराय, बसवराय, पुरन्दर दास (1484–1564) को श्रेय दिया जाता है। गीत, सूलादि और भजन संप्रदाय की विधाएँ इन सभी संगीतज्ञों के प्रयास से विकसित हुईं— ये 'दास कुटा' नाम से प्रचलित थे। इसी तरह अन्नमाचार्य ने हज़ारों पद एवं संकीर्तन की रचना की और यह 'तल्लपाक' नाम से जाने जाते थे। रामा अमात्य, जो वारंगल के तिम्मा राया या रामा राया के राज्य में मंत्री थे, ने *स्वरमेल कलानिधि* में 'मेल' सिद्धांत को परिष्कृत रूप से समझाया। इसी समय कीर्तन और तरंगम् का प्रचलन भी भ्रदचाल रामदास और नारायण तीर्थ ने किया। क्रमश: 'मेल' के सिद्धांत में बदलाव आए। गोविन्द दीक्षितर एवं व्यंकटमुखी जैसे प्रवीण संगीतज्ञों ने अपने ग्रंथ *संगीत सुधा* एवं *चतुर्दण्डी प्रकाशिका* में 'मेल' के मूल सिद्धांतों का वर्णन किया, जिसे गोविन्दाचार्य ने *संग्रह चूड़ामणि* में भी सम्मिलित किया।

चित्र (ऐ) – मृदंगम्

अठारहवीं शताब्दी के उपरांत कर्नाटक संगीत

राजाओं के दरबारों में 18वीं शताब्दी के उपरांत रागम्-तानम्-पल्लवी प्रचलन में आई। संगीतकारों के गुणों को समाज में दर्शाने के लिए इन विधाओं को अपनाया गया। कर्नाटक संगीत के स्वर्णिम काल का श्रेय त्यागराज (1767–1847), श्यामाशास्त्री (1776–1835), मुत्तुस्वामी दीक्षितार (1762–1827) को दिया जाता है। 'कृति' (जो शुद्ध रागों को दर्शाती है) का विकास इन तीन संगीतज्ञों के कारण ही संभव हुआ। महाराजा स्वाती तिरुनाल (1813–47) एवं गोपालकृष्ण भारती ने पदम्, वर्णम् एवं जावली जैसी सांगीतिक विधाओं को प्रचलित किया।

चित्र (ओ) – एलंगोवन एवं वेट्री भूपति— कर्नाटक शास्त्रीय गायन

मध्यकाल में उत्तरी भारत में मुसलमानों का आगमन हुआ, जिस कारण भारतीय संस्कृति पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ता चला गया। उत्तर भारत की ओर से मुस्लिमों के प्रवेश के कारण उत्तर भारतीय संस्कृति, संगीत व कलाओं में मुस्लिम व भारतीय संस्कृति का मिला-जुला रूप सामने आया। दक्षिण भारतीय संगीत इस सांस्कृतिक परिवर्तन से अछूता रहा। इसीलिए चौदहवीं शताब्दी से उत्तर भारतीय संगीत पद्धति

© NCERT not to be republished

'हिन्दुस्तानी संगीत' के नाम से व दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति 'कर्नाटक संगीत' के नाम से दो विभिन्न धाराओं के रूप में विकसित होने लगी। 'कर्नाटक संगीत पद्धति' दक्षिण भारत के तमिलनाडु, कर्नाटक, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश व केरल आदि प्रांतों में प्रचलित है, जबकि 'हिंदुस्तानी संगीत' भारतीय संगीत के रूप में अन्य सभी प्रांतों में प्रचलित है।

मध्यकाल में संगीत का समुचित विकास हुआ। इसी काल में अमीर खुसरो से कव्वाली, सुल्तान हुसैन शर्की से खयाल गान, मानसिंह तोमर से ध्रुपद और वाजिद अली शाह से ठुमरी गायन को प्रोत्साहन मिला। अकबर के शासन काल में तानसेन और बैजू बावरा सदृश गायकों ने ध्रुपद का श्रेष्ठतम् प्रदर्शन किया।

ब्रिटिश काल में संगीत की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी, किंतु तत्कालीन छोटी-छोटी रियासतों और ज़मीदारों के माध्यम से भारतीय संगीत पुष्पित और पल्लवित होता रहा। उन्नीसवीं शताब्दी से पंडित विष्णु नारायण भातखंडे और पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रयासों के फलस्वरूप संगीत की विद्यालयी शिक्षा प्रारंभ हुई, जिससे संगीत की शिक्षा जन-जन को सुलभ हो सकी। आज विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में जिस तरह का संगीत शिक्षण का प्रचार हमें दृष्टिगोचर हो रहा है, यह इन दोनों विद्वानों की देन है। इस तरह हम पाते हैं कि भारत में संगीत सदा तीन स्तरों पर लोकप्रिय और प्रवाहित रहा है। पहला वह, जिसमें शास्त्रीय नियमों के अंतर्गत ही गायन, वादन व नृत्य किया जाता था, जिसे आज हम 'शास्त्रीय संगीत', कहते हैं। ध्रुपद, धमार, खयाल, तराना, चतुरंग, त्रिवट आदि गेय विधाएँ जो विभिन्न रागों में गाई जाती हैं, शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत आती हैं। दूसरा 'उपशास्त्रीय संगीत' जिसमें नियमबद्धता तो है, किंतु उसमें लचीलापन होने के कारण कहीं-कहीं नियमों की शिथिलता भी ग्राह्य मानी गई है। ठुमरी, दादरा, चैती, कजरी आदि गीत के प्रकार इस वर्ग में सम्मिलित हैं। तीसरा 'लोक संगीत' जो मूलत: लोक अर्थात् सामान्य रूप से जनसाधारण में प्रचलित रहा है, जो समाज में संपन्न की जाने वाली विभिन्न रस्मों, रीति-रिवाजों व दैनिक क्रियाकलापों से संबंधित रहता है। इसमें विवाह गीत, ऋतु गीत, झूले के गीत, खेती व चूल्हे चक्की के गीत, विदाई गीत आदि गाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक अन्य संगीत के प्रकार को 'सुगम संगीत' के नाम से भी जाना जाता है। इसमें भक्ति संगीत, गीत, गज़ल आदि समाविष्ट होते हैं। इनमें कभी शास्त्रोक्त रागों का, तो कभी लोकधुनों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

चित्र (औ) – छत्तीसगढ़ का लोक वाद्य

वर्तमान काल में भिन्न-भिन्न गायन शैलियों के कई घरानों का निर्माण हुआ। इसी काल में सितार, सरोद वाद्यों के लोकप्रिय होने से कई घराने निर्मित हुए। अत्यंत लोकप्रिय अवनद्ध वाद्य तबला के छह घराने प्रचार में आए, जबकि पखावज के मूल रूप से तीन घराने प्रचार में आए। वादन शैली की भिन्नता के आधार पर तबले के छह घराने बने जिनके नाम हैं— दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ, फ़र्रुखाबाद,

बनारस और पंजाब। जबकि पखावज के तीन घराने बने जिनके नाम हैं— नाथद्वारा, कुदऊ सिंह तथा नाना साहब पानसे परंपरा।

सारांश स्वरूप कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत की शृंखला अनादि काल से चली आ रही है, जिसे प्रथमत: गंधर्व, किन्नर, अप्सराओं व देवी-देवताओं द्वारा प्रयोज्य माना गया और उसे गांधर्व की संज्ञा दी गई। तदोपरांत शास्त्रबद्ध होने पर वेदों, पुराणों, उपनिषदों व शिक्षा ग्रंथों आदि में वर्णित होने पर उसे मार्ग व देशी संगीत के रूप में परिभाषित किया गया। शास्त्रोक्त नियमों का कठोरता से पालन किए जाने पर उसे 'मार्ग' कहा गया। आबद्ध होने पर भी उसमें लोकरुचि के आधार पर नियमों की शिथिलता किए जाने पर, देशी संगीत की श्रेणी में रखा गया। यहीं से क्रमश: मंत्रोच्चारण, जातिगायन, ध्रुवगान, राग गायन, प्रबन्धगान, ध्रुपद, धमार, खयाल, चतुरंग, त्रिवट, तराना आदि गेय विधाओं का कालक्रमानुसार आविर्भाव होता चला गया। हज़ारों वर्षों से चली आ रही इस संगीत यात्रा में तंत्रीवादन की वादन शैलियों, सुषिर वाद्यों में अनेक प्रकार के रागों व धुनों आदि को नवीन चिंतन के साथ बजाने व अवनद्ध वाद्यों में अनेक प्रकारों के अनुरूप नए-नए कायदे, परन, टुकड़ों आदि को नवीन तकनीकी के साथ बजाने की परंपरा वर्तमान काल तक अनवरत रूप से चली आ रही है। आश्रम, गुरुकुल व संगीतशालाओं आदि में गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से संगीत का संरक्षण व विकास मौखिक व शास्त्रबद्ध रूप में प्रवाहित होता रहा है। उपशास्त्रीय संगीत के रूप में ठुमरी, दादरा, टप्पा, चैती, कजरी आदि विधाओं का विकास होता चला गया।

जनमानस में सामान्य रीति-रिवाजों, त्यौहारों के अवसर पर जो संस्कार गीत, ऋतुगीत, पूजा गीत, विवाह गीत आदि गाए जाते हैं या बाँसुरी, ढोलक, शंख, मंजीरा, सारंगी या हारमोनियम आदि वाद्य बजाए जाते हैं या उनके साथ विभिन्न तरह के नृत्य किए जाते हैं, उन पर हर प्रांत या स्थानीय भाषाओं, बोलियों और वेशभूषा आदि की छाप दिखाई देती है। यह लोकसंगीत के रूप में जाना जाता है। शास्त्रीय, उपशास्त्रीय व लोकसंगीत के बीच का प्रकार सुगम संगीत के रूप में पहचाना जाता है, जिसमें गज़ल, भजन, गीत, भक्ति संगीत, कीर्तन आदि गीत प्रकार समन्वित रहते हैं, जिनमें कभी शास्त्रीय संगीत के रागों व गेय विधाओं का प्रभाव दिखाई देता है तो कभी लोक विधाओं का प्रभाव दिखाई देता है।

इस चिर पुरातन काल से चली आ रही संगीत की शृंखला को अध्ययन व शोध कार्य की दृष्टि से तीन स्थूल भागों में विभाजित किया गया है—

प्राचीन काल— इसके अंतर्गत प्राक् वैदिक काल से लेकर विभिन्न काल खण्डों से होते हुए तेरहवीं शताब्दी तक का क्रमिक विकास सम्मिलित है।

मध्यकाल— इसके अंतर्गत चौदहवीं शताब्दी से अठारवीं शताब्दी तक का सांगीतिक इतिहास व क्रमिक विकास सम्मिलित है।

आधुनिक काल— इसके अंतर्गत उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर वर्तमान काल तक का सांगीतिक इतिहास व क्रमिक विकास सम्मिलित है।

अंतत: कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत कल्पना व चिंतन पर आधारित एक ऐसी प्रक्रिया है जो किसी उपवन में खिले पेड़, पौधे, पत्तों व फूलों के समान निरंतर परिवर्तनशील रहती है। नित-नूतन आकार ग्रहण करती है, परंतु उपवन की परंपरागत रूपरेखा को संरक्षित व संवर्धित रखने के लिए निरंतर प्रयासरत रहती है।

2022-23

© NCERT not to be republished

© NCERT not to be republished

विषय-सूची

आमुख *iii*

प्राक्कथन *v*

भूमिका *xi*

भारतीय संगीत का ऐतिहासिक अवलोकन

1. भारतीय संगीत का सामान्य परिचय 1
2. कैसे दिखते हैं तबला एवं पखावज वाद्य? 13
3. तबला एवं पखावज वाद्यों पर बजने वाले वर्ण एवं बोल 21
4. तबला एवं पखावज वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास 27
5. ताल-लिपि पद्धति एवं विभिन्न ठेके 37
6. पारिभाषिक शब्द 55
7. भारतीय संगीत में वाद्य वर्गीकरण 71
8. तबला एवं पखावज वाद्यों के घरानों का वर्णन 85

पहेलियों के उत्तर 92

संदर्भ 93

परिशिष्ट 1 कुछ प्रचलित अवनद्ध लोक वाद्य 94

परिशिष्ट 2 तबला एवं पखावज वाद्यों के प्रमुख कलाकार 98

परिशिष्ट 3 ध्वनि का मस्तिष्क पर प्रभाव 104

परिशिष्ट 4 दृश्य कला और प्रदर्शन कला पाठ्यक्रम संचालित करने वाले कुछ विश्वविद्यालय 110

© NCERT not to be republished

अवनद्ध वाद्य